IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882
INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण : एक संक्षिप्त विवेचन

रितेश कुमार सिंह
शोध छात्र
स्नातकोत्तर दर्शनशास्त्र विभाग
वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय,आरा, बिहार

सारांश

भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण प्रमा का साधन है अर्थात इसके द्वारा यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है । प्रमाण के अभाव में प्रमा की उत्पत्ति संभव नहीं है, क्योंकि यदि ज्ञान प्राप्ति का वैध साधन न हो तो व्यक्ति ज्ञान को जान ही नहीं सकता है । भारतीय दर्शन के विभिन्न संप्रदाय में प्रमाण की संख्या को लेकर सहमति नहीं है लेकिन प्रत्यक्ष को प्रमाण रूप में सभी भारतीय दार्शनिक संप्रदाय स्वीकार करते हैं तथापि प्रत्यक्ष प्रमाण के स्वरूप को लेकर इन सभी में मतभेद है ।

प्रस्तावना

प्रत्यक्ष शब्द प्रति+अक्ष से मिलकर बना है जिसमें प्रति से तात्पर्य समक्ष का तथा अक्ष से तात्पर्य नेत्र है और इस प्रकार प्रत्यक्ष का अर्थ हुआ कि जो नेत्र के सामने हो वह प्रत्यक्ष कहलाएगा । लेकिन इस प्रत्यक्ष के अर्थ के साथ समस्या यह है कि तब भ्रांति, भ्रम एवं विभ्रम के समय हुए प्रत्यक्ष को भी प्रमा का साधन मानना होगा जो की अप्रमा है । अतः यह प्रत्यक्ष का संकीर्ण अर्थ हुआ । वही वैशेषिक सूत्र के भाष्यकार प्रशस्तपाद के अनुसार अक्ष से तात्पर्य कान,जीभ, नाक, नेत्र, त्वचा, मन है अर्थात प्रत्यक्ष इन इंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान है ।

चार्वाक दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष

चार्वाक दर्शन के अनुसार वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति एकमात्र प्रत्यक्ष प्रमाण से ही होती है । **'प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्'**[1] अर्थात प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है, अन्य नहीं । क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण में निश्चयात्मकता, साक्षतता होती है जो अन्य में नहीं है । इसके द्वारा विषय से सीधे संपर्क होने के कारण व्यक्ति विषय के सत्य स्वरूप को जान सकता है । विषय का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष होना ही प्रत्यक्ष ज्ञान की प्रमाणिकता या अप्रामाणिकता को निर्धारित करता है । उनके अनुसार इंद्रिय तथा विषय के सन्निकर्ष से प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति होती है। प्रोफेसर संगम लाल पांडे के अनुसार सबसे पहले केवल नेत्र के द्वारा हुआ प्रत्यक्ष ये मानते थे लेकिन यह बाद में अन्य इंद्रिय प्रत्यक्ष को भी मानने लगे । रूप, रस, स्पर्श, शब्द, गंध इन पांच इंद्रिय प्रत्यक्ष की ही यहां मान्यता है[2]। वही डॉक्टर चंद्रधर शर्मा भी इन पांच प्रकार के इंद्रिय प्रत्यक्ष को चार्वाक द्वारा मान्यता प्राप्त है, बताते हैं और चार्वाक के अनुसार सुख-दु:ख आदि का अनुभव भी इन्हीं पांचो पर निर्भर किया हुआ, कहते हैं[3] । लेकिन डॉक्टर शोभा निगम के अनुसार चार्वाक मन से भी प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, मानते हैं और यही मन ही सुख और दु:ख आदि का अनुभव करता है । यहां प्रत्यक्ष इंद्रियों द्वारा वाह्य प्रत्यक्ष तथा मन द्वारा मानस प्रत्यक्ष, से दो प्रकार का है[4] । चार्वाक दर्शन की ना तो प्रत्यक्ष की परिभाषा ज्ञात है और ना यह ज्ञात है कि वह प्रत्यक्ष का लक्षण कैसे करते हैं ।

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष

जैन दर्शन की प्रत्यक्ष अवधारणा समस्त भारतीय दार्शनिक संप्रदायों में विशिष्ट है । उनके अनुसार जिस ज्ञान को आत्मा बिना किसी माध्यम के स्वयं जानती है वह प्रत्यक्ष है । उमास्वाति के अनुसार प्रत्यक्ष वह प्रामाणिक ज्ञान है जिसे जीव इंद्रियों, मन के बिना सहायता लिए साक्षात प्राप्त करता है । यह इसकी विशेषता है कि यहां प्रत्यक्ष प्रमाण पूर्णतया स्वनिर्भर है । यह **शुद्ध**, परिपूर्ण है तथा इसकी परिपूर्णता प्राप्ति के तीन विभिन्न स्तर हैं या इस प्रत्यक्ष प्रमाण के तीन प्रकार भी हैं - दूर या सूक्ष्म वस्तु का ज्ञान अवधि ज्ञान है । अन्य व्यक्तियों के मन की बातों का बोध होना मन: पर्याय ज्ञान है और सभी कर्मों, बाधाओं के नष्ट होने पर पूर्ण ज्ञान के रूप में केवल ज्ञान है जिसको आचार्य गुणरत्न ने पारमार्थिक प्रत्यक्ष तथा आचार्य हेमचंद्र ने - "**सर्वथावरणविलये चेतनस्य स्वरूपाविर्भावो मुख्यं केवलम्**"[5] अर्थात आत्मा का स्वरूपाविर्भाव कहा है । अनुयोगद्वारा सूत्र में प्रत्यक्ष इंद्रिय प्रत्यक्ष तथा नो इंद्रिय प्रत्यक्ष में बांटा गया है तथा इंद्री प्रत्यक्ष के पांच प्रकार तथा नो इंद्रिय प्रत्यक्ष के अवधि, मन: पर्याय, केवल यह तीन प्रकार बताए गए हैं । न्यायावतार में प्रत्यक्ष के स्वार्थ व परार्थ यह दो भेद बताए गए हैं । भट्ट अकलंक ने प्रत्यक्ष के साव्यवहारिक प्रत्यक्ष तथा मुख्य प्रत्यक्ष के रूप में दो भेद किया जिसमें साव्यावहारिक के इंद्रिय प्रत्यक्ष, अनिंद्रीय प्रत्यक्ष तथा मुख्य के अवधि, मन: पर्याय, केवल, यह भेद हैं । आचार्य विद्यानंद ने प्रत्यक्ष प्रमाण के तीन भेद इंद्रिय, अनिंद्रीय, अतींद्रिय, किए हैं । आचार्य वादिदेवसूरी ने प्रत्यक्ष के साव्यवहारिक, पारमार्थिक भेद किए तथा साव्यावहारिक के भेद इंद्रियजन्य और इंद्रियजन्य के प्रकार अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा बताएं हैं । वही पारमार्थिक के प्रकार सकल और विकल हैं जिसमें सकल के प्रकार केवल ज्ञान तथा विकल के प्रकार अवधि, मन: पर्याय ज्ञान है । इस प्रकार जैन दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण को क्रमिक विकास दृष्टि से उमास्वाति प्रतिपादित धारा तथा उत्तरवर्ती धारा में बांटा जा सकता है जिसमें पहली धारा प्रत्यक्ष को आत्मा सापेक्ष मानती है जिसमें इंद्रिय, मन का स्थान नहीं है वहीं दूसरी धारा इंद्रिय, मन से होने वाले ज्ञान को भी साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हुए उसे प्रत्यक्ष वर्ग में समाहित करती है । आचार्य अकलंक ने **"प्रत्यक्ष विशदं ज्ञानम्**"[6] अर्थात् विशद या स्पष्ट ज्ञान को प्रत्यक्ष बताया है जो कि दोनों ही धाराओं पर लागू होती है । इसीलिये अकलंक के अनुसार -

"प्रत्यक्षलक्षणं प्राहुः स्पष्टं साकारमञ्जसा
द्रव्यपर्याय सामान्य विशेषार्थात्मवेदनम्||"[7]

अर्थात् जो ज्ञान स्पष्ट, साकार, द्रव्य पर्यायात्मक, स्वप्रकाश हो तथा सामान्य विशेषात्मक अर्थ को जानता हो, प्रत्यक्ष है ।

बौद्ध दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष

बौद्ध दर्शन में प्रत्यक्ष लक्षण पर विचार करते हुए सबसे पहले स्पष्टत: आचार्य वसुबंधु के अनुसार अर्थ से या विषय मात्र से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है[8] । इसका खंडन करते हुए आचार्य दिङ्नाग ने कहा है कि - "**अक्षमक्षं प्रतिवर्तते इति प्रत्यक्षम्**"[9] अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान इंद्रिय के आश्रित अथवा सन्निकर्ष से उत्पन्न है और "**प्रत्यक्षं कल्पनापोढं नामजात्याद्यसंयुतम्**"[10] अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान कल्पना रहित होता है अर्थात प्रत्यक्ष का लक्षण कल्पनापोढ है । उनके अनुसार **"नामजात्यादियोजना"**[11] अर्थात् कल्पना से वे नाम, जाति, गुण, क्रिया, द्रव्य आदि योजना का, तात्पर्य लेते हैं । इसका खंडन न्याय दार्शनिक उद्योत्तकर करते हैं तब आचार्य धर्मकीर्ति दिङ्नाग प्रणीत प्रत्यक्ष लक्षण परिभाषा को परिमार्जित करते हुए अभ्रांत शब्द को जोड़ते हुए बताते हैं कि - "**तत्र प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम्**"[12] अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान कल्पना से रहित एवं अभ्रांत है । इसका समर्थन आचार्य धर्मोत्तर, आचार्य शांतरक्षित, आचार्य कमलशील भी करते हैं । धर्मकीर्ति कहते हैं कि- **"अभिलाप संसर्गयोग्य प्रतिभासा प्रतीतिः कल्पना"**[13] अर्थात् वे कल्पना से तात्पर्य वाचक शब्द के संसर्ग योग्य प्रतीति से करते हैं । उनके अनुसार **"तया रहितं तिमिराशुभ्रमणनौयानसंक्षोभाघनाहित विभ्रमं ज्ञानं प्रत्यक्षम् "**[14] अर्थात् प्रत्यक्ष कल्पना से रहित वह ज्ञान है जिसमें रतौंधी, शीघ्रता से घूमने, नाव से जाना और प्रकोप से भ्रम उत्पन्न नहीं किया जा सकता है और **"तस्य विषयः स्वलक्षणम्"**[15] अर्थात् यह प्रत्यक्ष इंद्रिय ज्ञान, मनोविज्ञान, स्वसंवेदन, योगी ज्ञान, से चार प्रकार का है । वे प्रत्यक्ष का विषय स्वलक्षण से लगाते हैं । **बौद्ध** दर्शन प्रत्यक्ष में मात्र निर्विकल्प ज्ञान की भूमिका को मानता है ।

न्याय दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष

भारतीय दर्शन में न्याय दर्शन का प्रत्यक्ष विषयक मत सबसे लोकप्रिय है । महर्षि गौतम के अनुसार **"इन्द्रियार्थ संनिकर्षोत्पन्नमं ज्ञानं अव्यपदेशमव्यभिचारिव्यवसायात्मक प्रत्यक्षम्"**[16] अर्थात् प्रत्यक्ष वह है जिसमें इंद्रिय तथा अर्थ के सन्निकर्ष से ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है जो तीन विषयों पर आधारित नहीं हो -

1. भाषा पर,
2. भ्रामकता पर,
3. अनिश्चितता पर ।

लेकिन यह परिभाषा एकांकी होने के कारण विश्वनाथ के अनुसार **"इन्द्रियार्थ संनिकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्"**[17] अर्थात् ज्ञानअंतरजन्य न होने से प्रत्यक्ष अपरोक्ष ज्ञान है **(ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्)** । वही इंद्रिय में ब्राह्य इंद्रिय और मन को शामिल करते हुए अन्नभट्ट प्रत्यक्ष को इंद्रिय-अर्थ सन्निकर्ष का परिणाम मानते हैं । नव्य न्यायिक गंगेश उपाध्याय प्रत्यक्ष को विषय की साक्षात प्रतीति मानते हैं **(प्रत्यक्षस्य साक्षात्कारितवं लक्षण)** । न्यायिक केशव मिश्रा के अनुसार साक्षात्कारी प्रमा का करण प्रत्यक्ष है और साक्षात्कारी प्रमा इंद्रियजन्य है । उनके अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण का इंद्रिय, इंद्रिय अर्थ सन्निकर्ष तथा निर्विकल्प ज्ञान, इन तीनों में से कोई भी उसका करण होने में सक्षम है । न्यायसिद्धांत मुक्तावली के आधार पर पहले प्रत्यक्ष के लौकिक तथा अलौकिक, यह दो प्रकार किए गए हैं । लौकिक के 6 भेद क्रमशः नेत्रज, रासन, गंधज, त्वचा, श्रवण, मानस प्रत्यक्ष हैं वहीं अलौकिक के क्रमशः तीन प्रकार सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण, योगज हैं । पुनः एक अन्य प्रकार से लौकिक प्रत्यक्ष के तीन प्रकार निर्विकल्पक, सविकल्पक, प्रत्यभिज्ञा है । पुनः एक अन्य प्रकार से प्रत्यक्ष के भेद या इसकी दो अवस्थाएं निर्विकल्प तथा सविकल्प हैं । निर्विकल्प में नाम, जाति आदि का ज्ञान नहीं होता है और यह मात्र इंद्रिय संवेदन अवस्था है । सविकल्प में नाम, जाति आदि का ज्ञान होता है और इसमें इंद्रिय संवेदन के साथ अर्थ को शामिल करते हैं । निर्विकल्प के बाद ही सविकल्प अवस्था आती है । न्याय दर्शन के अनुसार ज्ञान सदा सविकल्प होता है ।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष

वैशेषिक दर्शन का प्रत्यक्ष प्रमाण विचार न्याय दर्शन के प्रत्यक्ष प्रमाण के विचारों के समान ही प्रतीत होता है । प्रशस्तपाद के अनुसार **"तत्राक्षमक्षं प्रतीत्योत्पद्यत इति प्रत्यक्षम्"**[18], अर्थात् इंद्रिय से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है । अर्थात छह इंद्रियों के माध्यम से द्रव्य आदि पदार्थों का ज्ञान प्रत्यक्ष है । अतः यह छह प्रकार के प्रत्यक्ष मानते हैं । उनके अनुसार प्रत्यक्ष के दो भेद न्याय दर्शन के समान निर्विकल्पक तथा सविकल्पक ही हैं ।

सांख्य दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष

सांख्य दार्शनिक ईश्वरकृष्ण के अनुसार **"प्रतिविषयाध्यवसायः दृष्टम्"**[19], अर्थात् प्रत्येक ज्ञान के विषय के प्रति इंद्रिय के माध्यम से बुद्धि का जो पृथक - पृथक जो निश्चित ज्ञान है, वह प्रत्यक्ष है । सांख्य की प्रत्यक्ष - प्रक्रिया न्याय दर्शन की प्रत्यक्ष प्रक्रिया से अलग प्रकार की है । सांख्य दर्शन के प्रत्यक्ष में इंद्रिय, बुद्धि, अहंकार, मन, इन चारों का युगपत योगदान होता है । यहां विषय का संयोग बुद्धि में होता है । बुद्धि में विषयआकार प्रतिबिंबित होता है जिसके परिणाम में विषय का प्रत्यक्ष होता है । लेकिन विज्ञानभिक्षु के अनुसार यह लौकिक प्रत्यक्ष प्रणाली है और योगियों को साक्षात प्रत्यक्ष भी हो सकता है जिसमें उनकी बुद्धि का विषयआकार होना आवश्यक नहीं है । योग शक्ति संपन्न होने से उनका संपर्क मूल प्रकृति से होता है । अनिरुद्ध के अनुसार वस्तु का साक्षात, तात्कालिक ज्ञान प्रत्यक्ष है । सांख्य दर्शन भी दो प्रकार का प्रत्यक्ष निर्विकल्प तथा सविकल्प को मानता है जिसका स्वरूप न्याय दर्शन के निर्विकल्प तथा सविकल्प की ही तरह है ।

योग दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण

योग दर्शन में भी सांख्य दर्शन के प्रत्यक्ष स्वरूप को ही मान्य किया गया है । कहा गया है कि इंद्रियों की सहायता से चित्त का वाह्य विषयों से युक्त होना ही प्रत्यक्ष प्रमाण है[20] ।

मीमांसा दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण

आचार्य जैमिनी ज्ञानेंद्रिय से विद्यमान पदार्थ के साथ संबंध होने पर प्रत्यक्ष ज्ञान का उदय होता है – **"सत्त्समप्रयोगे पुरुषस्येंद्रियाणां बुद्धिजन्म तत्त्प्रत्यक्षम्"**[21] ऐसा मानते हैं । आचार्य कुमारिल के अनुसार इंद्रियों का विषयों के साथ सम्यक संबंध होने पर प्रत्यक्ष ज्ञान होता है । आचार्य प्रभाकर के अनुसार साक्षात प्रतीति ही प्रत्यक्ष है जिसमें ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान, तीनों सम्मिलित (त्रिपुटी प्रत्यक्ष) हैं । मीमांसक अलौकिक प्रत्यक्ष को अप्रमाणिक मानते हैं परंतु भाट्ट चिंतामणिकर गागाभट्ट अलौकिक प्रत्यक्ष को स्वीकार करते हैं और उसके दो

प्रकार सामान्य लक्षण तथा ज्ञान लक्षण मानते हैं । मीमांसा दर्शन में भी प्रत्यक्ष के दो प्रकार निर्विकल्पक तथा सविकल्पक माने गए हैं जिनका स्वरूप न्याय दर्शन के समान ही है । हां, न्याय दर्शन के विपरीत यहां निर्विकल्पक प्रत्यक्ष में प्रवृत्ति - सामर्थ्य होना, माना गया है ।

अद्वैत वेदांत दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष

अद्वैत वेदांत के अनुसार **"तत्र प्रत्यक्षप्रमायाः करणं प्रत्यक्षप्रमाणम्"**[22] अर्थात् जिस प्रमाण के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती है, वह प्रत्यक्ष है । इसमें इंद्रियों की आवश्यकता अनिवार्य नहीं है । वेदांत परिभाषा में प्रत्यक्ष के तीन प्रकार से भेद प्राप्त होते हैं -

1. सविकल्पक और निर्विकल्पक प्रत्यक्ष, - **"तच्च प्रत्यक्षं द्विविधिम्। सविकल्प - निर्विकल्पक भेदात्"**[23] | जिसका स्वरूप न्याय दर्शन से थोड़ा भिन्न प्रकार का है ।
2. जीव साक्षी और ईश्वर साक्षी प्रत्यक्ष – **"तच्च प्रत्यक्षं पुनर्द्विविधं- जीवसाक्षि ईश्वरसाक्षि चेति"**[24]
3. इंद्रिय प्रत्यक्ष और इंद्रियजन्य प्रत्यक्ष – **"उक्तं प्रत्यक्षं प्रकारान्तरेण द्विविधं इन्द्रियजन्यं तद्जन्यं चेति"**[25] । उल्लेखनीय है कि वेदांत दर्शन में मन को इंद्रिय नहीं माना गया है । स्वामी सुबोध आनंद के अनुसार प्रमेयावच्छिन्न, प्रमाणावच्छिन्न, तथा प्रमातावच्छिन्न, की एकता का नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है[26]।

विशिष्टाद्वैत दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष

विशिष्टाद्वैत आचार्य रामानुज के अनुसार वस्तु और इंद्रियों के सन्निकर्ष से प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है । उनके यहां पर भी प्रत्यक्ष विचार न्याय दर्शन जैसा ही है । रामानुज भी निर्विकल्प तथा सविकल्प का भेद मानते हैं । किंतु उनके अनुसार निर्विकल्प में जाति, धर्म का ग्रहण होता है । लेकिन इस स्तर पर सामान्य का ग्रहण नहीं होता है जिसका सविकल्प के स्तर पर पता चलता है और तब उसका ग्रहण होता है ।

द्वैत दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण

द्वैत आचार्य मध्व के अनुसार इंद्रिय - अर्थ संयोग से प्रत्यक्ष ज्ञान होता है । वे प्रत्यक्ष ज्ञान के आठ भेद साक्षी, यथार्थ ज्ञान, छह इंद्रियों से साक्षात उत्पन्न ज्ञान, मानते हैं । उनके अनुसार सारे प्रत्यक्ष सविकल्पक ही होते हैं । अनुमान, शब्द की अपेक्षा प्रत्यक्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण, निश्चयात्मक, प्रमाणिक प्रमाण है । उल्लेखनीय है कि उन्होंने निर्दोष प्रत्यक्ष को प्रमाण माना है । प्रत्यक्ष को किसी और प्रमाण द्वारा सिद्ध , असिद्ध नहीं किया जा सकता है । उनके अनुसार दोषयुक्त प्रत्यक्ष का बाध केवल यथार्थ प्रत्यक्ष से ही संभव है ।

द्वैताद्वैत दार्शनिक आचार्य निंबार्क तथा शुद्धाद्वैत दार्शनिक आचार्य वल्लभ भी प्रत्यक्ष प्रमाण को मानते हैं ।

उपसंहार

इस प्रकार भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण के ऊपर काफी गंभीर चिंतन मनन किया गया है । बौद्धों ने इसे स्वलक्षण का कल्पना रहित ज्ञान के रूप में लिया है तो वहीं चार्वाकों ने इंद्रिय प्रत्यक्ष के रूप में । वेदांत व प्रभाकर आदि ने इसे साक्षात ज्ञान के रूप में लिया है तो वही जैन असाक्षात ज्ञान के रूप में लेते हैं । यह एकमात्र ऐसा प्रमाण है जिसके लिए अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है । सारे प्रमाण इसी पर किसी न किसी प्रकार से आधारित हैं । भारतीय दार्शनिकों के प्रत्यक्ष संबंधी मतों में यह सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने प्रत्यक्ष के स्वरूप तथा सीमा को इंद्रिय प्रत्यक्ष तक ही सीमित नहीं माना है, चार्वाक को छोड़कर । उन्होंने असाक्षात, योगज प्रत्यक्ष आदि को मानकर प्रत्यक्ष के स्वरूप तथा सीमा को असीमित कर दिया है । हां, जिसमें अभ्यास के द्वारा ही उच्चतम स्तर की प्राप्ति कर साक्षात्कार या अनुभूति प्राप्त होगी, ऐसा माना जाता है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहस्पति - सूत्र ।
2. पांडेय संगमलाल, भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण पेज नंबर 78, सेंट्रलपब्लिशिंगहाउस इलाहाबाद, 2002 .
3. शर्मा चंद्रधर, भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन पेज नंबर 23, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, 2010
4. निगम डॉ• शोभा, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास पटना, पेज नंबर 65, 2011 .
5. प्रमाणमीमांसा, 1.15
6. सिद्धिविनिश्चय, 1.19
7. न्याय विनिश्चय, 3
8. अनेकर स्टीफन, सेवेन वकस आफ वसुबंधु, पेज नंबर 40 ।
9. धर्मोत्तरप्रदीप, पेज नंबर 38, 77 पर उद्धृत ।
10. प्रमाणसमुच्चय, 1.3
11. प्रमाणसमुच्चयवृत्ति, 3
12. न्यायबिंदु, 1.4
13. वही, 1.5
14. वही, 1.6
15. वही, 1.12
16. न्यायसूत्र, 1.1.4
17. तर्क संग्रह, पृ 70.
18. प्रशस्त्र पाद भाष्य, पृ 442
19. सांख्यकारिका, 1.5
20. यो• सू• वृ•, 1.6
21. जैमिनीसूत्र, 1.1.4
22. वेदांतपरिभाषा, पृ• 20
23. वही, पृ• 76.
24. वही, पृ• 85.
25. वही, पृ• 142, 143.
26. स्वामी सुबोधानंद, प्रमाण विचार, चिंमय प्रकाशन मुंबई, मार्च 2018.